E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

सुश्रुतसंहिता

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

आयुर्वेद के इतिहास में चरक के अनन्तर सुश्रुत का महत्वपूर्ण स्थान आता है। आचार्य सुश्रुत प्राचीन कालके एक उच्चकोटिके आयुर्वेदाचार्य एवं शल्यतन्त्रनिष्णात शल्य चिकित्सक थे।इनकी संहिता सुश्रुतसंहिता चरकसंहिता के समान ही उपादेय, प्रामाणिक तथा प्राचीन मानी जाती है। सुश्रुत के व्यक्तिगत इतिहास का पता नहीं चलता। उपलब्ध 'सुश्रुतसंहिता' के उपदेश काशीपति दिवोदास हैं जो धन्वन्तरि के अवतार माने जाते हैं तथा श्रोता सुश्रुत है। सुश्रुतसंहितामें उल्लेख है कि सुश्रुत महर्षि विश्वामित्रके पुत्र थे और इन्होंने धन्वन्तरिजीसे शल्य शास्त्रकी शिक्षा ग्रहण की थी-

धन्वन्तरिर्धर्मभृतां वरिष्ठो वाग्विशारदः।

विश्वामित्रसुतं शिष्यमृषिं सुश्रुतमन्वशात्।।

चक्रदत्त ने भी इसका समर्थन किया है। महाभारत से भी इसकी पुष्टि होती है। भावमिश्र ने भी विश्वामित्र को काशीपति दिवोदास के पास अपने पुत्र सुश्रुत को अध्ययनार्थ भेजने का उल्लेख किया है। काश्यप तथा आत्रेय के समान विश्वामित्र गोत्रवाची शब्द है। फलतः सुश्रुत विश्वामित्रगोत्री किसी ब्राह्मण के पुत्र थे।

शल्यचिकित्सा का प्रथम उपदेशक दिवोदास धन्वतरि हुए। उन्होंने अपने सात सुयोग्य शिष्यों को इस उपयोगी ज्ञान में दीक्षित किया और उन शिष्यों द्वारा आयुर्वेद की शल्यचिकित्सा पद्धति लोक में विश्रुत हुई। धन्वन्तरि के उन लोक हितकारी सात शिष्यों में सुश्रुत ही एक ऐसे है जिनका तन्त्र आज उपलब्ध है। आचार्य सुश्रुत महर्षि विश्वामित्र के पुत्र थे। महाराज गाधि उनके पितामह थे सुश्रुत ऋषिस्थानीय माने गये हैं।

वस्तुतः जिस प्रकार महर्षि आत्रेय के उपदेशों का संग्रह कर आचार्य अग्निवेश ने अग्निवेश तन्त्र की रचना की, जो आगे चलकर चरकसंहिता नाम से प्रसिद्ध हुई, उसी प्रकार सुश्रुत ने धन्वन्तरि के उपदेशों को संगृहीत कर सुश्रुतसंहिता का निर्माण किया।

सुश्रुतसंहिता आयुर्वेदिक विषयों का भाण्डारगार है। ययह शल्यप्रधान ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ को शल्यतन्त्र का मानदण्ड माना जाता है। यह शल्य की प्रतिनिधि संहिता है। चरक की अपेक्षा इसका चिकित्सा विज्ञान अधिक व्यावहारिक है।

इस संहिता में शिक्षणपद्धति के प्रकार बहुत ही स्पष्टता से बतलाए गए हैं। शास्त्र के अर्थ को तत्परता के साथ जानने का निर्देश है। अध्ययन तभी पूर्ण होता है, जब अध्येता को शास्त्र के अर्थ का ज्ञान, व्यावहारिक क्रियाओं में दक्षता, कर्माभ्यास और चिकित्साकर्म की सफलता में पूर्ण विश्वास उत्पन्न हो जाता है-

तस्माच्छास्त्रेऽर्थविज्ञाने प्रागल्भ्ये कर्मनैपुणे।
तदभ्यासे स सिद्धौ च यतेताध्ययनान्तगः।।

आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व सुश्रुत ने जो किया था उसी का विकसित रूप आज की प्लास्टिक सर्जरी है। सुश्रुत को पूरे संसार में आज भी प्लास्टिक सर्जरी का जनक कहा जाता है। वे पहले चिकित्सक थे जिन्होंने उस शल्य क्रिया का प्रचार किया जिसे आज सिजेरियन ऑपरेशन कहते हैं। सुश्रुत संहिता प्रमुख रूप से शल्य चिकित्सा का ग्रन्थ है तथा इसका शल्य के क्रियात्मक ज्ञान से अधिक सम्बन्ध है। इसीलिए सुश्रुत ने कर्मज्ञान और शास्त्र ज्ञान (सिद्धान्त और क्रियात्मक) दोनों को आवश्यक माना है क्योंकि एक ही ज्ञान (Theory or Practical) को रखने वाला व्यक्ति एक पाँख वाले पक्षी के समान अपना कार्य-कुशलतापूर्वक नहीं कर पाता है। वे एक अच्छे अध्यापक भी थे। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा था 'अच्छा वैद्य वही है जो सिद्धान्त और अभ्यास दोनों में दक्ष हो'। वे अपने शिष्यों से कहा करते थे कि वास्तविक शल्य चिकित्सा से पहले जानवरों की लाशों पर शल्य चिकित्सा का अभ्यास करना चाहिये क्योंकि ऐसा चिकित्सक जिसे केवल शास्त्र ज्ञान हो अथवा केवल उपचार के लिये व्यवहारिक ज्ञान ही हो, दोनों ही अपने व्यवसाय के लिये अनुपयुक्त होते हैं। वे स्वयं

मूत्र नलिका में पाये जाने वाले पत्थर निकालने में, टूटी हड्डियों को जोड़ने में और मोतियाबिन्द की शल्य चिकित्सा में दक्ष थे।

सुश्रुतसंहिता शल्यशास्त्र की एकमात्र अतिविशिष्ट रचना है। इसमें शल्यशास्त्र की मुख्य रूप से चर्चा होना स्वाभाविक है, फिर भी शल्येतर अंगों का भी पर्याप्त विवेचन उपलब्ध होता है। इतना ही नहीं इसमें जीवन के महान् उच्च आदर्शों का भी यत्र-तत्र उल्लेख है। इसी कारण से आयुर्वेद को न केवल चिकित्सा का ही शास्त्र कहा जाता है अपितु इसकी 'आत्मा का शास्त्र' के रूप में भी पहचान है। यह सम्पूर्ण संहिता छः स्थानों में विभक्त है। ये स्थान तथा इनमें वर्णित विषयों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

सुश्रुत संहिता में 6 खण्ड या स्थान है जिनके क्रमशः नाम है सूत्रस्थान, निदानस्थान, शारीरस्थान, चिकित्सास्थान, कल्पस्थान तथा उत्तरतन्त्र ।

सूत्रस्थान- सूत्रस्थान में ४६ अध्याय हैं। शल्यकर्मसिद्धि के लिए जिन यन्त्र, अनुयन्त्र, शस्त्र, अनुशस्त्र आदि उपकरणों की आवश्यकता होती है उन सबका इसमें वर्णन है। इसके अतिरिक्त क्षारकर्म, अग्निकर्म, जलौकावचारण, शस्त्रकर्म भेद, व्रण का विशद वैज्ञानिक विवरण, कर्णव्यधबन्धन विधि, युक्तसेनीय, द्रवद्रव्य विज्ञान तथा अन्नपानविधि का विस्तार में उल्लेख है।

निदानस्थान- निदानस्थान में १६ अध्याय हैं। इनमें अर्श, अश्मरी, भगन्दर आदि शल्यकर्म साध्य व्याधियों के हेतु, लक्षण, भेद आदि का विवरण दिया गया है। इस स्थान में शालाक्य सम्बन्धी मुख, दन्त, तालु तथा कण्ठगत रोगों के हेतु आदि का भी उल्लेख है।

शरीरस्थान- शरीरस्थान 10 अध्यायों में विभक्त है। इसमें शरीर के अवयवों का वर्णन है। इसी में सृष्टि के क्रम का भी वर्णन है। तदनन्तर शुक्र, शोणित, गर्भ का बनना, गर्भ के अंग प्रत्यंगों का वर्णन है। अस्थियों की गणना में वेदवादियों का मत प्रदर्शित है। अन्तिम अध्याय में कौमारभृत्य का रोचक विवरण है।

चिकित्सास्थान- चिकित्सास्थान में ४० अध्याय हैं, जिनमें व्रणचिकित्सा के विशद विवरण के अतिरिक्त भग्नचिकित्सा का विचारोत्तेजक वर्णन, अर्श और भगन्दर आदि के शल्यकर्म, मधुमेह एवं

मूढगर्भ की चिकित्सा, चिकित्सा सहित क्षुद्र रोगों का वर्णन, रसायन तथा वाजीकरण एवं पञ्चकर्म का विस्तार से उल्लेख है। इसमें शल्यतन्त्र सम्बन्धी रोगों तथा उनके प्रकारों का विशिष्ट वर्णन है। शल्यसम्बन्धी विधि के अनन्तर स्वस्थवृत्त तथा सद्वृत्त का भी उपयोगी विवरण है।

कल्पस्थान- कल्पस्थान में 8 अध्याय हैं। इसमें विष की चिकित्सा वर्णित है। स्थावर तथा जंगम विषों के लक्षण तथा प्रकार का विवेचन कर सर्पविष की चिकित्सा, आचूषण (रक्त चूस लेना), छेद (काटना) तथा दाह (कटे हुए स्थान का जलाना) के द्वारा बतलाई गई है।

उत्तरतन्त्र- उत्तरतन्त्र में ६६ अध्याय हैं। इसका उत्तर अर्थात् श्रेष्ठ नाम सार्थक है। इसमें प्रारम्भ के १९ अध्यायों में नेत्र रोगों का सांगोपांग वर्णन है। कर्ण, नासा एवं शिरोरोग वर्णन तथा उनकी चिकित्सा भी दी हुई है। ग्यारह अध्यायों में नवग्रहों का चिकित्सा सहित वर्णन है। ज्वर, अतिसार, शोष आदि अनेक रोगों का तथा उनकी चिकित्सा का उल्लेख भी है। इसी प्रकार स्वस्थवृत्त, तन्वयुक्तियों, रस एवं दोष भेद भी वर्णित हैं।

भारत में शल्य क्रिया का व्यवसाय शल्य वैद्य, भिषक् (चिकित्सक) भिषगाथर्वण (पुरोहित-चिकित्सक), विषहर (जहर उतारने वाले) तथा कृत्यहर (पिशाचों के दुःप्रभाव का उपचार करने वाले) करते थे। सुश्रुत शल्य-चिकित्सा का व्यवसाय करते थे तथा इसकी शिक्षा भी देते थे। सुश्रुत ने अपनी संहिता में आयुर्वेद को अथर्ववेद का एक उपांग माना है। कुछ लोग ऋक् संहिता से मानते हैं।

सुश्रुत ने विभिन्न शल्यक्रियाओं के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के शल्यक्रिया उपकरणों का वर्णन किया है। उन्होंने 101 प्रकार के कुन्द उपकरण तथा 20 प्रकार के पैने उपकरण गिनाए हैं। उन्होंने लिखा है कि उपकरण सामान्यतया अच्छे लोहे के बने होने चाहिए, उनका आकार संतुलित हो, उन्हें मजबूती से पकड़ा जा सके तथा उनके सिरे देखने में डरावने न लगते हो। शरीर के विभिन्न भागों पर पट्टी बाँधने की उन्होंने 14 भिन्न-भिन्न रीतियाँ बताई है। उन्होंने प्रदाहकों के प्रयोग प्रदाहन, जोक द्वारा रक्त निकालने तथा शिरा में छेदन करने का वर्णन भी किया है ।

शल्य शास्त्र में तीन प्रकार के कर्म कहे गये हैं- (1) पूर्व, (2) प्रधान, (3) पश्चात् ।

पूर्व– ऑपरेशन से पूर्व किए जाने वाले कर्म यथा उपकरणों, रोगी आदि को तैयार करना ।

प्रधान- यह शस्त्र कर्म है।

पश्चात्- ऑपरेशन के बाद किये जाने वाले कर्म ।

शस्त्र कर्म आठ प्रकार का है— छेद्य, भेद्य, लेख्य, वेध्य, ऐष्य, आहार्य, विस्राव्य, सीव्य।

सुश्रुतसंहिता में घावों की सिलाई, सीने के प्रकार, घावों का बाँधना, पट्टी बाँधने के स्थान, आलेप तथा आलेपन, शल्यागार तथा उनमें प्रयुक्त होने वाली सामग्री आदि विषयों का सांगोपांग वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त प्रसूतिविद्या के क्षेत्र में वस्तुतः ही सुश्रुत की महानता का बोध होता है। अन्य क्रिया विधियों के अतिरिक्त कठिन तथा कष्टदायक प्रसव की निराशाजनक दशा में सुश्रुत ने चिमटी के प्रयोग तथा ऑपरेशन करने का समर्थन किया है। इस ऑपरेशन को आजकल सशल्य गर्भ निष्कासन (सीजिरियन सैक्सन) कहते हैं।

शल्य क्रिया और चिकित्सा शास्त्र के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी सुश्रुत ने वर्णन किया है जैसे विविध ऋतुओं के प्रभाव से पौधों के रस में अम्लीय, खारा तथा मीठापन आता है। शिशिर, वसन्त व ग्रीष्म ऋतु में रस कड़वा, तीखा तथा खट्टा हो जाता है। मानव शरीर वसन्त ऋतु में 'कफ' से, शरद ऋतु में 'पित्त' से तथा वर्षा ऋतु में 'वात' से अव्यवस्थित हो जाता है। जिस समय कोई रोग या महामारी फैल रही हो उस समय सर्वोत्तम बचाव यह है कि इस प्रकार के जल तथा सब्जियों का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

भिन्न-भिन्न रोगों के लिये 20 प्रकार के कृमियों का वर्णन भी सुश्रुत ने किया है। छः प्रकार के कृमि अव्यवस्थित कफ से, सात प्रकार के दूषित रक्त से तथा सात विष्ठा में पैदा होते है। नाना प्रकार की धातुओं तथा उनके यौगिकों का वर्णन भी किया है जैसे- स्वर्ण का स्वाद मीठा और रुचिकर होता है तथा शक्तिवर्धन का कार्य करता है। रजत में अम्लीय स्वाद होता है तथा इसकी शक्ति शीतलता देती है तथा पित्त और वात को नष्ट करती है। मोती, मूँगा, हीरा, नीलम आँखों की रोशनी के लिये हितकर है तथा अपनी सामर्थ्य भर शीतलता पहुँचाते हैं। संक्षेप में सुश्रुत के शल्यशास्त्र में आयुर्वेद के मौलिक तथ्यों का विवेचन विस्तार के साथ वर्णित है।

आचार्य सुश्रुत ने अपने ग्रन्थ में सौ से भी अधिक (यन्त्रशतकोत्तरम्) शल्य-शस्त्रों का वर्णन किया है और उसकी विशेषताएं बताई हैं। जैसे-

(१) शस्त्रोंकी मूठ एवं जोड़ मजबूत होने चाहिये।

(२) वे चमकीले और अति तीक्ष्ण रहने चाहिए।

(३) शास्त्रों को अति स्वच्छ एवं व्यवस्थित रखना चाहिए-कोमल वस्त्र में लपेटकर अच्छी तरहसे रखना चाहिये।

(४) अस्थि मिलाने (जोड़ने) के लिये बाँसकी पट्टियाँ का प्रयोग करना चाहिये।

(५) अस्थियाँ बाहर खींचने के लिये एवं भीतर बैठानेके लिये बाहर से मालिश करना आदि विभिन्न क्रियाएँ अस्थिरोगों के विषय में अति आवश्यक हैं।

(६) व्रणों के अनेक प्रकार होते हैं और उन उपचार पद्धति भी भिन्न-भिन्न होती है।

(७) मस्तक और चेहरेपर घाव (जख्म) होनेपर वहाँ सूई से टाँके लगाने चाहिये।

(८) यदि घाव में लोहा या लोहखण्ड, लोहकण घुस गये हों तो वहाँ पर लोहचुम्बक (Magnet) का उपयोग करना चाहिये।

(९) सूजे हुए भाग पर लेप (उबटन, मरहम) और पथ्य का प्रयोग करना चाहिये। पोटिस (पुलटिस) बाँधना, सेंक करना, शिराका वेध करना चाहिये। ग्रन्थि-छेदन करके निकालना चाहिये।

(१०) जलोदर और वृषणवृद्धिपर शलाका से छेद करना चाहिये।

(११) मूतखडा (ब्लेजर-स्टोन) को निकालनेके लिये शस्त्रक्रिया करनी चाहिये आदि आदि।

आचार्य सुश्रुत त्वचारोपणतन्त्र में भी अति निष्णात थे। आँखोंके 'मोतीबिंदु' कटेरेक निकालने की सरल कला के वे विशेषज्ञ थे। यदि मातृगर्भ से शिशु योग्य मार्ग से न आता हो, तो मातृगर्भस्थ शिशु को निर्विघ्न बाहर निकालने के विविध प्रकार सुश्रुत अच्छी तरह जानते थे। इसका विवरण सुश्रुतसंहितामें लिखा है।

इस शल्य-चिकित्सा-ग्रन्थ सुश्रुतसंहिता का अध्ययन करनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि धन्वन्तरि काशिराज दिवोवास शल्यप्रधान चिकित्सा के जनक हैं और सुश्रुतसंहिता शल्य-चिकित्सा का आदि

ग्रन्थ है। आजकल ऑपरेशन के लिये जिन-जिन यन्त्रों का उपयोग होता है, उनमेंसे अधिकांश का विवरण सुश्रुतसंहिता में है।